दबा दिया गया। अपने श्रमजन्य क्रिया-कलापों में लगे हुए मानव की चेतना उन छल-बलों को सुलझाने में सफल न हो सकी। प्रारंभिक दौर में तीव्रतम विरोध की चेतना भी दिखाई देती है। जिसे आर्य-अनार्य संघर्ष के रूप में इतिहास में देखा जा सकता है। लोक समाज में आर्यों के विरोध करने वाले अनार्यों को दैत्य-दानव, असुर राक्षस, आदि का नाम देकर समाज विरोधी सिद्ध करने के लिए आर्य मिथकीय ग्रंथों की रचना कर लोक समाज में घृणा पैदा करने और उस घृणा को उनकी चेतना का हिस्सा बनाने का कार्य भाववादी दर्शन का सहारा लेकर करते रहे। और तो और उन अनार्यों की अजेय शक्ति को, विरोध की चेतना की शक्ति को भी 'परम सत्ता' द्वारा दी गई शक्ति के रूप में निरुपित कर देववाद और ईश्वरवाद के मिथ को संसार के मानव समाज के संचालक शक्ति के रूप में निरुपित किया गया। लोक समाज को अपने वश में करने के लिए भाववादी विचारकों ने न केवल प्रकृति का भयावह रूप प्रस्तुत किया वरन् इन विरोधी शक्ति की भयावह भौतिक रूप की रचना कर लोक समाज के भय को चरम तक पहुंचाने के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक दी। यही वजह है कि दैत्य-दानव असुर-राक्षस, के बहुत विकृत और भयावह नृतत्वशास्त्रीय वर्णन चित्रण किए गए। यही मिथ लोक संस्कृति का अंग बनता गया और लोक समाज में आस्था और अनास्था की सीमा रेखा बनती गई।

जहां भय होता है वहीं परम सत्ता की कल्पना की जाती है। जिसका भौतिक रूप एन्द्रिक संज्ञान की पकड़ से बाहर होती है वहीं भय उत्पन्न होता है और वहीं उससे रक्षा के लिए पूजा-पाठ का विधि-विधान शुरु होता है। लोक संस्कृति के संस्कारों और पर्वों में इस रूप को देखा जा सकता है। ऋतुओं के विशिष्ट भौतिक रूपों से पर्वों का बहुत गहरा संबंध होता है। प्रकृति की भौतिकवादी और भाववादी व्याख्या लगभग वैदिक काल से शुरु हो चुकी थी। भाववाद लोक पर्वों और भौतिकवादी रूप को मिथकीय रूप देकर रहस्यमय बनाता रहा। और बलि या पूजा के क्रिया-कलाप को धर्म से जोड़कर मिथकीय विधि विधान में बांधने का कार्य करता रहा। लोक संस्कृति में सावन के महीने में सम्पन्न होने वाले पर्वों में भौतिकवाद और भाववाद, इतिहास और मिथ, समाजशास्त्र और कल्पनाशास्त्र के विभिन्न रूपों को आसानी से देखा जा सकता है। झंझा बलि की परंपरा को रुद्रबलि के मिथ में बदलने की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। सावन के प्रारंभ में 'सवनाही बरोने' के लोक पर्व में रुद्र बलि के मिथ और झंझा बलि के प्रकृतिवाद के द्वन्द्व को स्पष्ट देखा जा सकता है। छत्तीसगढ़ के लगभग सभी गांवों में सावन की वर्षा जन्य आपदाओं और बीमारियों से बचने के लिए सवनाही बरोने की प्रकृति पूजा आदिम काल से चली आ रही है। भाववादियों ने इसे रुद्र बलि का नाम दिया। किन्तु लोक समाज ने इसे रुद्र बलि के मिथ के साथ कभी स्वीकार ही नहीं किया। वह प्रकृति की विजातीय शक्तियों को शांत कर लोक समाज की रक्षा के लिए प्रकृति को दी जाने वाली बलि के रूप में ही सवनाही बरोने का कार्यक्रम करता रहा। और यह परंपरा लोक संस्कृति का अभिन्न अंग बन गयी। गुह्य सूत्र के मिथकीय विधान में रुद्र को बलि देने का समय रात में निर्धारित किया गया किन्तु लोक संस्कृति ने अपनी परंपरा में आधीरात को सवनाही बरोने का समय नियत कर लिया। गुह्य सूत्र के धर्मवादी और भाववादी मिथ में गांव के बाहर बलि देने की बात कही गई। लोक संस्कृति के गांव की सीमा 'मेड़ो' (जहां गांव की भूमि दूसरे गांव की भूमि के साथ मिलती है) को मानकर उसी स्थान पर बलि देने की परंपरा को स्वीकार किया। गुह्य सूत्र के मिथ में केवल बलि देने की बात कही गई है किन्तु सवनाही बरोने में काफी लंबे समय तक 'उल्टा पांख के कुकरी' (मुर्गी) को और उसके बाद 'कुकरीगार' (मुर्गी का अण्डा) को और अब नारियल की बलि दी जाती है। गुह्य सूत्र में केवल बलि शब्द है जिसका अर्थ बलि देने वाले प्राणी के गले को काटना होता है। किन्तु लोक संस्कृति में बलि का अर्थ गुह्य सूत्र से एकदम भिन्न है। 'सवनाही बरोने' में जिस प्राणी का उपयोग होता है उसे मेड़ों में गड्ढा खोदकर गड़ा दिया जाता है और उसे ही प्रकृति की विजातीय शक्ति को बलि देना मान लिया जाता है।

इतना ही नहीं, कई गांवों में बलि देने वाली मुर्गी के माथे पर लाली बंतन 'बुककर' छोड़ देने की भी परंपरा है। यह लोक का अपना मिथ है जो मानव की उत्पादन क्रिया के विकास के साथ पैदा हुआ है। इतिहास और भौतिक विज्ञान की द्वन्द्वात्मकता में यह भी दिखाई देता है कि आदिम मानव समाज मातृसत्तात्मक रहा है। कालान्तर में उत्पादन संबंध और उत्पादन क्रिया के विकास के साथ मातृसत्ता की मुखिया माता मिथ में रुपांतरित हो गई। इसे मिथ में रूपांतरित भाववादी दर्शन या भाववादी संवेदन ने नहीं किया वरन् आदिम मानव समाज की अविकसित चेतना ने कबीले की रक्षा में उनकी शक्ति के भौतिक संज्ञान के आधार पर उसे देवी मान लिया और उसकी पूजा पाठ शुरु कर दी होगी। यह भी संभव है कि आदिम सामाजिक व्यवस्थाओं की मातृशक्ति ने अपने पूर्वज मातृशक्ति के विभिन्न रूपों का मिथ रचा होगा। और कई प्रकार की देवियों के मिथ की रचना हुई होगी। देवी की मिथ का पूर्वाधार इस तरह लौकिक और भौतिक ही रहा है। भाववादी संवेदन ने बाद में उत्पादन संबंधों में पितृसत्ता के आगमन के बाद उन दैवीय मिथ को अलौकिक और सूक्ष्म प्रत्यय के रूप में स्थापित किया होगा और उसमें अपने परजीवी समाज की मातृशक्ति को भी देवी बनाने उस समूह में शामिल कर दिया होगा।

परजीवी भाववादी समाज को अपने ऐशो आराम की जिंदगी के सामान जुटाने के लिए लोक के श्रमजीवी समाज पर निर्भर होना पड़ता था इलिए यह वर्ग श्रमजीवी के प्राकृतिक या भौतिक मिथ के साथ अपने पितृसत्ता के देववादी मिथ को जोड़कर समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता होगा। यही वजह है कि लोक संस्कृति के सभी पर्व त्यौहार में मातृशक्ति और पितृशक्ति का यह समन्वय दिखाई देता है। लोक संस्कृति के